मङ्गल-कुंकुम

मुनि विद्यानन्द

•

जैन बुक एजेन्सी
सी० ६ कोनॉट प्लेस, नई देहली-१
टेलीफोन : ४०९२६-२२९४५९

प्रकाशक :
जैन बुक एजेन्सी
पोस्ट बक्स नं० ११३
सी० ९, कोनॉट प्लेस
नई देहली-१

प्रथम सस्करण, ३०००
जनवरी, १९६७

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स
क्वीन्स रोड, देहली
फोन २७८०९३

प्रारम्भिक वक्तव्य

मंगलमय जीवन की सभी कामना करते हैं। कामना की प्राप्ति उपाय-चिन्तन से होती है। आज प्रतिक्षण मंगल-विरुद्ध परिणति में लोक-मानस आकंठ मग्न है। भौतिकता के रंगमहल तो ऊँचे से ऊँचे उठ रहे हैं, परन्तु आध्यात्मिक मन्दिरों की नींव के लिए आधार-शिलाओं की न्यूनता प्रतीत हो रही है। आज जन-जनका मन असन्तोष, चिन्ता, उद्वेग, अभाव इत्यादि आकुलताओं से पीड़ित है। अतिभौतिक जीवन का यह अनिवार्य परिणाम है। मनुष्य को शान्ति, सुख तथा निराकुलता पाने के लिए अपने पूर्वजों की ओर देखना होगा। भले ही वह विज्ञान की उपलब्धियों के लिए आधुनिकता का ऋणी रहे। अपनी दैनिकचर्या में देवदर्शन, स्वाध्याय, जप नियमों का ध्रुव परिपालन ही वह पूर्वजों की निधि है, जिसे ग्रहण कर आज

का त्रस्त मानव सुख-शान्ति-लाभ कर सकता है। आध्यात्मिकता का प्रत्येक चरण मंगलमय है। उसी में ऐसे उदात्त तत्त्व हैं जिन्हें पाकर मनुष्य भौतिकता के सम्पूर्ण त्रासदायी तत्त्वों से बच सकता है। विश्व मानव का प्रत्येक सूर्योदय मंगल-कुंकुम से चर्चित हो यही इस लघु-ग्रन्थ का अभिप्राय है। इस सत्प्रकाशन के लिए धर्मानुरागी श्री शान्तिप्रसाद जी (जैन बुक एजेन्सी, दिल्ली) को आशीर्वाद।

——मुनि विद्यानन्द

मङ्गलकुङ्कुम

ॐकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

नमस्तस्यै सरस्वत्यै विमलज्ञानमूर्तये ।
विचित्रा लोकयात्रेयं यत्प्रसादात् प्रवर्तते ॥३॥

नमो वृषभसेनादिगौतमान्त-गणेशिने ।
मूलोत्तरगुणाढ्याय सर्वस्मै गुरवे नमः ॥४॥

गुरुभक्त्या वयं सार्धद्वीपद्वितयवर्तिनः ।
वन्दामहे त्रिसंख्योननवकोटिमुनीश्वरान् ॥५॥

ॐकार के सबिन्दु स्वरूप का योगिजन नित्य ध्यान करते है । यह ॐकार कामनाओं एवं मोक्ष (उभय)—का प्रदाता है । ॐकार को बारंबार नमस्कार है ॥१॥ भगवती सरस्वती ने अपने निरन्तर वर्षणशील शब्द-वारिद-समूह से समस्त लोक के मालिन्य रूप दुर्लाछन को प्रक्षालित कर दिया है । मुनियों ने इसी वाग्देवता द्वारा तीर्थों की उपासना की है । वह देवी शारदा हमारे दुरितों को दूर करे ॥२॥ विमल ज्ञान की साक्षात् मूर्ति उस सरस्वती को नमस्कार है, जिसकी अनुकम्पा से यह अद्भुत संसार-यात्रा चल रही है ॥३॥ उत्तम मूलगुणधारी वृषभसेन तथा गौतम गणधरों से सेव्यमान समस्त गुरुओं को नमस्कार है ॥४॥ हम गुरुभक्ति से अढाई द्वीपों मे निवास करने वाले त्रिसंख्यान्यून नवकोटि मुनीश्वरों की वन्दना करते है ॥५॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६॥

श्रीपरमगुरवे नमः । परम्पराचार्यगुरवे नमः । सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसाम्परिवर्द्धकं सद्धर्मप्रवर्तकं भव्यजीवमनःप्रबोधकारकमिदं शास्त्रं पुण्यप्रकाशनं पापप्रणाशनं श्री नामधेयमस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः

श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसारमासाद्य श्री   आचार्येण विरचितं ग्रन्थमिदं मंगलं भूयात् ।।

अज्ञान तिमिर से लोक अन्ध सदृश हो रहे हैं, उन्हे कुछ नही सूझता। गुरुदेव ज्ञान-रूप अंजनशलाका (कज्जल की सलाख) लेकर उनके लोचनों को आँजते है, उन्मीलन करते हैं। उन लोकोपकर्त्ता गुरुदेव के चरणों में नमस्कार हो ।।६।। श्री परम गुरु को नमस्कार है, परम्पराप्राप्त आचार्य गुरु को नमस्कार है। यह शास्त्र सम्पूर्ण पापों का विध्वंसक, कल्याण की वृद्धि करनेवाला, सम्यक् धर्म मे प्रवृत्तिकारक, भव्य जीवों के मन मे प्रबोध के सूर्योदय जगाने वाला, पुण्य (उपादेय ज्ञान) का प्रकाशक तथा पाप (हेय ज्ञान) का प्रणाश करनेवाला श्री···शुभ नाम धेय है। इसके मूलकर्त्ता श्री सर्वज्ञदेव है, उत्तर ग्रन्थकर्त्ता श्री गणधरदेव है–– प्रति गणधरदेव है। उनके मूल वचनों का अनुसरण कर श्री···नाम आचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना की है। पाठकों का मंगल हो।

मंगलं भगवानर्हन् मंगलं भगवान् जिनः ।
मंगलं प्रथमाचार्यो मंगलं वृषभेश्वरः ॥७॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥८॥

भगवान् अर्हन्त देव मंगल हैं, भगवान् जिनेश्वर मंगल हैं, प्रथम आचार्य मंगल हैं और भगवान् वृषभनाथ मंगल हैं ॥७॥ भगवान् महावीर मंगल हैं, गौतम गणधर मंगल हैं, आचार्य कुन्दकुन्द मंगल हैं और जैन धर्म मंगलमय है ।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु

श्रोता सावधान होकर सुनें

विशेष टिप्पणी——(मंगल की आवश्यकता) किसी भी शुभ कार्य का आरम्भ मंगल पाठ से ही किया जाता है यह भारतीय संस्कृति-परम्परा है। मंगल से आरम्भ किये हुए कार्य में विघ्न नहीं होते——यह शास्त्र-सम्मति असिद्ध नहीं है। क्योंकि यदि शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मक्षय स्वीकार नहीं किया जाएगा तो अन्यथा उनका क्षय होगा ही नहीं। 'कषाय पाहुड़' के मंगल-विचार प्रकरण में यही प्रतिपादित करते हुए लिखा गया है——'मंगलं हि कीरदे पारद्धकज्जविग्घयरकम्मविणासणट्ठं। तं च परभागमुवजोगादो चेव णस्सदि। ण चेदमसिद्धं। सुह सुद्ध परिणामे हि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो ॥' श्री देवसेनाचार्य ने 'तत्त्वसार' की ५वीं कारिका में लिखा है कि अक्षर रूप का ध्यान करते हुए भव्यों को बहुत पुण्यबन्ध होता है और उस पुण्यबन्ध-परम्परा से मोक्ष होता है। यथा——

'तेंसि अक्खररूवं भवियमणुस्साण झायमाणाणं।
बज्झइ पुण्णं बहुसो परंपराए हवे मोक्खो ॥'

कन्नड़ भाषा में प्रारम्भ-मंगल

परम परंज्योति कोटिचन्द्रादित्यकिरणसुज्ञान-प्रकाश ।
सुररमुकुटमणिरंजितचरणाब्ज शरणागु प्रथमजिनेश ॥१॥

सिद्धर सततविशुद्धरबोध समृद्धर नेनेदु नानीग ।
सिद्धरसदोलु लोहवनद्दि दंतात्म सिद्धिय पडेवे निन्नेनु ॥२॥

व्यवहार-निश्चयव्नरिदु तम्मात्मतत्त्ववन्नेमि निजव साधिसुवा ।
नवकोटि मुनिगलु भूवरिल्लेनलुं टवरिगलिगेर गुवेनु ॥३॥

परब्रह्मत्रिभुवनसारचिदंबर पुरुष निरंजन सिद्धा ।
दुरितं जय हंसनाथ नमो नमो गुरवे प्रत्यक्षवागेनगे ॥४॥

विन्नह गुरुवे ध्यानके बेसरा दाग निन्नादिय माडिकोंडु ।
कन्नड़दोंलगोदुं कथेय पेलुवेनदु निन्नाज्ञे कंडानन्नोडेया ॥५॥

—रत्नाकर कवि

अर्थ—हे प्रथम जिनेश ! आपका दीप्तिमान प्रकाश सुज्ञानमय है और कोटि-कोटि चन्द्र तथा सूर्यों की पुंजीभूत तेजोराशि के सदृश है। आपके चरणारविन्दों मे समस्त सुर तथा सुरेन्द्र आकर (उपस्थित होकर) अपनी-अपनी मुकुटमणियों को स्पर्शित कर धन्य होते है। मैं आपकी शरण में हूँ ॥१॥

जिस प्रकार सिद्धरस (शोधित पारद रसायन) के सम्पर्क से लोहा भी सुवर्ण-परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार मै भी सदा परिशुद्ध एव केवल ज्ञानशाली सिद्धों का चिन्तन करते-करते आत्मसिद्धि को प्राप्त करूंगा ॥२॥ मैं देव, गुरु और शास्त्र मे श्रद्धानरूप व्यवहार तथा एकमात्र आत्मा को छोडकर अन्यत्र सर्वत्र परपदार्थमय निश्चय रखते हुए इसी लोक मे अलौकिक रूप मे रहकर अपने आत्मा में दृढ श्रद्धान रखते हुए तीन कम नवकोटि मुनीश्वरों के चरण कमलों मे प्रणाम करता हूँ ॥३॥ हे परम गुरो ! आप सहजानन्द परब्रह्मस्वरूप है, त्रिभुवन में साररूप है, अनन्त ज्ञान सम्पन्न एवं चिदम्बर है, पुरुष (आत्मरूप) है तथा अष्टकर्म नष्ट कर निरंजन-सिद्ध पद को प्राप्त है। आप दुरितों पर विजय प्राप्त करनेवाले तथा हंस है। (हम सब अमुक्त जीव तो आत्मावस्थित न होने से कर्म के खिलौने है) हे देव ! आपको अनन्त बार नमोऽस्तु। आप मुझे प्रत्यक्ष हो ॥४॥ हे परम गुरो ! मैं जिस समय शुभोपयोग मे प्रवृत्त होता हूँ तब आपको ही ध्यानस्थित करके कर्णाटक भाषा में उपदेश करता हूँ ॥५॥

अन्त्य मंगल

ई जिन कथेयनु केलिदवर पापबीजनिर्नाशन बहुदु ।
तेज बहुदु पुण्यबहुदु मुँदोलिदप राजितेश्वर काणुवरु ।।१।।

प्रेमदिंदिद नोदिदरे पाडिदरे केल् दामोद वैदु वरवरु ।
नेमदि सुररागि नाले श्रीमंदरस्वामीय काण्बर्रतियोलु ।।२।।

अभिमतसिद्धिदायक योगिनायक उभयलावण्यवरेण्य ।
प्रभेतोरु तेन्नान्त रंगदोलिरु बोधविभुवे चिदम्बर पुरुषा ।।३।।

जिनेन्द्र भगवान् की इस कथा को सुननेवाले भव्य जीवों के पापबीज का विनाश होगा और तेज तथा पुण्य की वृद्धि होकर वह अपराजित पद को प्राप्त होगा ।।१।। इस कथा को रुचिपूर्वक पढ़ने से तथा स्तुति को सुनने से भव्य जन आनन्द तथा शान्ति को प्राप्त कर श्रीसीमंदर स्वामी को देखेंगे ।।२।। हे अभिमत सिद्धिदायक ! सम्पूर्ण योगियों के नायक ! उभय सिद्धि को प्राप्त करने वाले लावण्ययुक्त प्रभो ! आप मेरे अन्तरंग में ज्ञान-प्रभा का संवर्द्धन करते हुए मेरी बुद्धि का विकास करते रहें ।।३।।

मंगल-आरती

(पण्डित श्री द्यानतरायजी कृत)

१

मंगल आरति आतमराम
तन मन्दिर मन उत्तम ठाम
समरस जल चन्दन आनन्द
तन्दुल तत्त्वस्वरूप अमन्द

२

समयसार फूलन की माल
अनुभव सुख नेवज धरि थाल
दीपक ज्ञान ध्यान की धूप
निर्मल भाव महाफल रूप

३

सुगुण भविकजन इक रंग लीन
निहचै नवधा भक्ति प्रवीण
धुनि उत्साह सुअनहद गान
परम समाधि निरत परिधान

४

बाहिज आतम भाव बहावै
अन्तर ह्वै परमातम ध्यावै
साहब-सेवक भेद मिटाय
'द्यानत' एकमेव हो जाय

लघु-नित्यपाठ-संग्रह:

णमोक्कार मंत्र

ॐ णमो अरहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥१॥

चत्तारि मंगलं
अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा
अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पवज्जामि
अरहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।

'झायहि पंचवि गुरवे मंगल चउसरण लोयपरियरिये ।
णर-सुर-खेचर-महिए आराहणणायगे वीरे ।।'

—भावपाहुड़, १२४

मन्दिर-दर्शन

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि
भव्यात्मनां विभव-सम्भवभूरिहेतु
दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटी–
नद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानम् ।।१।।

—दृष्टाष्टकस्तोत्र, १

स्तुति

सकल ज्ञेय-ज्ञायक तदपि निजानन्द रस-लीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित अरिरज-रहस-विहीन ॥१॥

जय वीतराग विज्ञान-पूर, जय मोह तिमिर को हरन-सूर।
जय ज्ञान अनन्तानन्तधार, दृगसुख-वीरज मण्डित अपार॥
जय परमशान्त मुद्रासमेत, भविजन को निज अनुभूति-हेत।
भवि भागनवश जोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय॥
तुम गुण चिंतत निज-पर-विवेक प्रगटै विघटैं आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषण-वियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्प-मुक्त॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप परमात्म परमपावन अनूप।
शुभ-अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अलीन॥
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गभीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नव केवल-लब्धि-रमा धरंत॥
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये, जाहिं, जैहैं सदीव।

भवसागर में दुख छार वारि, तारन को अवर न आप टारि ॥
यह लखि निज दुख गद हरण काज, तुम ही निमित्त कारण इलाज ।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधिफल पुण्य-पाप ।
निज को पर को करता पिछान पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ।
तन परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपद सार ॥
तुमको बिन जाने जो कलेश पाये, सो तुम जानत जिनेश !
पशु नारक नर सुरगति मँझार भव धर-धर मर्यो अनन्त बार ॥
अब काल लब्धि बल तैं दयाल तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ।
मन शान्त भयो मिटि सकल द्वन्द्व चाख्यो स्वातमरस दुखनिकन्द ॥
तातैं अब ऐसी करहु नाथ बिछुरै न कभी तुअ चरण साथ ।
तुम गुणगण को नहि छेव देव ! जग तारण को तुम विरद एव ॥
आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय ।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन ॥

मेरे न चाह कछु और ईश ! रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश !
मुझ कारज के कारन सु आप शिव करहु हरहु मम मोह ताप ।।
तुम शान्ति करन तम हरन हेत स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभव तें भव नशाय ।।
त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय ।
मो उर यह निश्चय भयो आज दुख जलधि-उतारन तुम जहाज ।।

दोहा

तुम गुणगणमणिगणपती गणत न पावहिं पार ।
'दौल' स्वल्पमति किमि कहै नमूं त्रियोग संभार ।।

क्षमापनपूर्वक पञ्चाङ्ग प्रणाम

'मोहध्वान्तविदारणं विशदविश्वोद्भासिदीप्तिश्रियं
सन्मार्गप्रतिभासकं विबुधसन्दोहामृताऽऽपादकम् ।
श्रीपादं जिनचन्द्र ! शान्तिशरणं सद्भक्तिमानौमि ते
भूयस्तापहरस्य देव ! भवतो भूयात् पुनर्दर्शनम् ।।'

हे भगवन् जिनेन्द्र ! आपके श्रीचरण शान्ति के निवास हैं, मोहान्धकार को विदीर्ण करने वाले हैं, सम्पूर्ण विश्व को उद्भासित करने योग्य दीप्ति श्री से परिलसित हैं, सम्यक्त्वमार्ग के दर्शक है, देवसमूह के लिए अमृत प्राप्ति कराने वाले है और भव्यों की भक्ति के केन्द्र हैं। हे देव ! (एवं गुणगणविशिष्ट आपके श्रीपाद दर्शन से शान्ति प्राप्त होती है, अतः) तापहारी आपके श्रीचरणों का पुनः पुनः दर्शन—सौभाग्य प्राप्त हो।

नित्य जाप्य मंत्र

'पणतीस-सोल-छप्पण-चदु-दुगमेकं च जवहज्झायेह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥'

परमेष्ठी के वाचक पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक अक्षर वाले मंत्र का प्रतिदिन जाप और ध्यान करना चाहिए।

१. पैंतीस अक्षरात्मक मन्त्र—

'णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ॥'

२. षोडशाक्षर मन्त्र—

'अरहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहू ।'

३. षडक्षर मन्त्र— **'अरहंत-सिद्ध'**

४. पञ्चाक्षर मन्त्र—**'अ-सि-आ-उ-सा'**

५. चतुरक्षर मन्त्र—**'अरहंत'**

६. द्व्यक्षर मन्त्र— **'सिद्ध'**

७. एकाक्षर मन्त्र—**'अ' अथवा 'ओम्'**

सर्वसिद्धि मन्त्र— **ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमः । (प्रतिदिन सहस्र जाप; मासपर्यन्त)**

सर्वशान्तिकर मन्त्र—**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा । (प्रतिदिन शतवार जाप)**

विशेष टिप्पणी—मंत्र जपने के लिए रत्न, सुवर्ण, सूत अथवा बीजों से बनी हुई माला लेकर वांछित—सिद्धि के लिए निम्नलिखित श्लोक पढ़ना चाहिए।

'ॐ ह्रीं रत्नैः सुवर्णैः सूतैर्बीजैर्वा रचिता जपमालिका ।
सर्वजपेषु सर्वाणि वांछितानि प्रयच्छतु ॥'

जप करते समय अपने सामने रखे हुए चौकी अथवा पाटे पर केसर

से स्वस्तिक रचना करनी चाहिए तथा उस पर अक्षत (बिना टूटे हुए) तण्डुल विकीर्ण करने चाहिए।

श्रीमहावीराष्टकस्तोत्रम्

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१॥

जिनके दर्पण सदृश चैतन्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-विवर्तों में अन्तरहित चित् और अचित् (चेतन एवं जड़) भाव एक साथ विलसित हो रहे है और सूर्य के समान जो लोकसाक्षी तथा (सम्यक्चारित्र)—मार्ग को प्रकट करने में तत्पर हैं वह भगवान् महावीर स्वामी मेरे नयनपथगामी (नेत्रों के समक्ष) हों ॥१॥

अताम्रं यच्चक्षुःकमलयुगलं स्पन्दरहितं
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥२॥

जिनके नेत्र (क्रोध-कषाय-रागादिपरिणति से रहित होने से मानो)—अताम्र (श्वेत) कमलपुष्प के युगल प्रतीत होते है तथा निष्पन्द हैं। जिन्हें देखकर उनका आभ्यन्तर शुक्लत्व प्रकट होता है और वे (नेत्र) संसार को अक्रोध का शिक्षण करते है। जिनकी मूर्ति अत्यन्त विमल तथा प्रशममयी है। वह भगवान् महावीर स्वामी मेरे नयनपथगामी हों ।।२।।

नमन्नाकेन्द्रालीमुकुटमणिभाजाल-जटिलं
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भवज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ।।३।।

जिनके शोभायमान चरणकमल युगल प्रणाम करते हुए देवेन्द्रों की मुकुट-खचित मणियों की प्रभाओं के अतिरेक से जटित है और शरीरधारियों की संसाराग्नि को शान्त करने में नीर-सदृश (शीतल) हैं वह भगवान् महावीर स्वामी मेरे नेत्रपथगामी हों ।।३।।

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह
क्षणादासीत् स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः।

लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ।।४।।

जिनकी अर्चना करने की भावना रखने वाला, प्रसन्नचित्त दर्दुर (मेंढक) भी इस लोक में क्षणमात्र काल में मरणोपरान्त गुणों से समृद्ध, सुखनिधि-भोक्ता स्वर्गीय देव हुआ तब यदि भगवच्चरणारविन्द के नित्यभक्त शिवसुख प्राप्त करें तो क्या आश्चर्य ? वह (सद्भक्तों को मोक्षसुख प्रदान करने वाले) भगवान् महावीर स्वामी मेरे नेत्रपथगामी हों ।।४।।

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः ।
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोऽद्भुतगति–
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ।।५।।

वह भगवान् यद्यपि शरीररहित (आत्मस्वरूप, निरंजन-निराकार) है तथापि उनका वर्ण दमकते हुए सुवर्ण के समान है। वह ज्ञान के भण्डार हैं। अद्भुत आत्म-शरीरधारी और एक हैं, अद्वितीय है (उनके तुल्य अन्य कोई नहीं है) वह नृपति-शिरोमणि सिद्धार्थ के पुत्र हैं। वह अजन्मा (पुनर्जन्मरहित) होकर भी श्रीमान् हैं,

मुक्ति श्री-समालिंगित है। सांसारिक रागादि से वर्जित है, अद्‌भुत गति (मोक्षरूप अलौकिक गति) के धारक है। एवंविध गुणगण-गणनीय भगवान् महावीर स्वामी मेरे नेत्रों के समक्ष होने की कृपा करें ॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥६॥

जिनकी वाणीरूप गंगा अनेक नयों की कल्लोल राशि से विमल है और अपने सर्वज्ञज्ञान-सलिल से संसार के जनसमूह को स्नान करा रही है। इस समय भी (भगवान् के मोक्ष-गमन के सहस्रों वर्षों के पश्चात् भी) ज्ञानधनी हंसों के समान उस (दिव्यध्वनि-गंगा) से परिचित है। वह भगवान् महावीर स्वामी मेरे नयनों के समक्ष होने की कृपा करें ॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः
कुमारावस्थायामपि निजबलाद् येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्दप्रशमपदराज्याय स जिनो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥७॥

कामविकार महान् सुभट है। काम के वेग का निवारण महाकठिन है। इसने त्रिभुवन को जीत लिया है परन्तु भगवान् महावीर ने अपनी कुमार अवस्था में ही इस लोकपराभवकारी विकार का दमन कर दिया। काम-विजय करते हुए उन्होंने नित्य आनन्दप्रदाता प्रशमपद (निर्वाण साम्राज्य) को प्राप्त किया। इस प्रकार के अतिवीर भगवान् महावीर कृपया मेरे नयनपथगामी हों ॥७॥

महामोहातङ्कप्रशमनपराकस्मिकभिषङ्
निरापेक्षो बन्धुर्विदितमहिमा मङ्गलकरः ।
शरण्यः साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥८॥

वह प्राणियों के उग्र मोह राग को शान्त करने में परमभिषक् (उत्तम वैद्य) समान हैं। अपेक्षावर्जित बन्धु हैं (संसार की बन्धुता किसी स्वार्थ की अपेक्षा रखती है) उनकी महिमा विश्रुत है, वह मंगलकर्त्ता हैं, संसार भय से त्रस्त साधु पुरुषों के शरण है तथा उत्तम गुणधारी हैं। वह भगवान् महावीर स्वामी कृपया मेरे नयनपथ-गामी हों ॥८॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम् ।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥९॥

श्री भागचन्द्र ने भक्तिपूर्वक इस 'महावीराष्टकस्तोत्र' की रचना की है। जो पढ़ेंगे और सुनेंगे वे परमगति प्राप्त करेंगे ॥६॥

बारह भावना

(पं० दौलतराम जी कृत 'छह ढाला' से)

भावनाओं के चिन्तन का कारण

मुनि सकलव्रती बडभागी, भवभोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंत्यो अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥

चिन्तन का फल

इन चिंतत समरस जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥

अनित्य भावना

जोबन गृह गोधन नारी, हय गज जन आज्ञाकारी।
इंद्रीयभोग जिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥

अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई ॥४॥

संसार भावना

चहुंगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं ।
सब विधि संसार असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा ॥५॥

एकत्व भावना

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहि तेते ।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥

अन्यत्व भावना

जल-पय ज्यौं जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला ।
तो प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत-रामा ॥७॥

अशुचि भावना

पल-रुधिर-राध-मल थैली, कीकस वसादितैं मैली ।
नवद्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥८॥

आस्रव भावना

जो जोगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई ।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्हें निरवेरैं ॥९॥

संवर भावना

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम-अनुभव चित दीना ।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासौं निज काज न सरना ।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥

लोक भावना

किन हू न करयो न धरै को, षट द्रव्यमयी न हरै को ।
सो लोकमाँहि बिन समता, दुख सहे जीव नित भ्रमता ॥१२॥

बोधिदुर्लभ भावना

अंतिम ग्रीवकलौंकी हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद ।
नर सम्यक् ज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निजमैं मुनि साध्यो ॥१३॥

धर्म भावना

जे भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे ।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे ॥१४॥
सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये ।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

अर्थ

हे भाई ! पंच महाव्रतधारी मुनि बड़े भाग्यशाली हैं। उन्होंने संसार-भोगों से विराग धारण किया है। उस वैराग्य को उत्पन्न करने मे माता के समान बारह

अनुप्रेक्षाओं का वारंवार चिन्तन करना श्रेयस्कर है ॥१॥ इनके चिन्तन से समत्व की प्राप्ति होती है जैसे अग्नि को पवन ने स्पर्श कर लिया हो। (जैसे प्रज्वलित भी अग्नि पवन-प्रवाह से अधिक प्रचण्ड हो उठती है, वैसे अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन से मन में संकल्प-विकल्प समाप्त होकर समताभाव (समभाव) प्रबुद्ध हो उठता है।) यह जीव जब आत्मस्वरूप को जान लेता है तभी शिव (मोक्ष) सुख को प्राप्त करता है ॥२॥ यौवन, गृह, गौ—आदि पशुधन. अन्य कांचनादि धन, स्त्री, अश्व, गज, आज्ञाकारी सेवक और इन्द्रियभोग—ये सभी क्षणस्थायी हैं और इन्द्रधनुष तथा विद्युत् के तुल्य चपल हैं ॥३॥ देव, असुर, विद्याधरचक्रवर्ती इत्यादि सभी को काल समाप्त कर देता है, जैसे सिंह मृग को नष्ट कर देना है। मणि, मंत्र,तंत्र आदि सभी प्रकार के उपाय मृत्युवशीकृत प्राणी की रक्षा नही कर सकते ॥४॥ जीव (कर्मपरिणाम से) चारों गतियों में (नर-सुर-तिर्यक्-नारक पर्यायों में) दुःख से आक्रान्त हैं और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव-रूप पच परिवर्तन करते रहते हैं। यह संसार सब प्रकार से सारविहीन है और इसमें लेशमात्र भी सुख नहीं है ॥५॥ जितने कर्मपरि-णामजन्य शुभ अथवा अशुभ फल हैं उन्हें यह जीव अकेला ही भोगता है। उस भोग में पुत्र-स्त्री आदि कोई भी साथी (सहभोक्ता) नहीं होते। वास्तव में ये सभी स्वार्थ के मित्र हैं ॥६॥ जल और दूध के समान शरीर और जीवात्मा का मेल हो रहा है परन्तु वास्तव में अभिन्न प्रतीत होते हुए भी दोनों पृथक्-पृथक् हैं। तब

स्पष्ट—रूप से अलग दिखायी देनेवाले धन, गृह, पुत्र और भार्या आदि आत्मा के साथ एक कैसे हो सकते है ।।७।। प्राणियों का यह शरीर मांस, रुधिर, राध, मल इत्यादि जुगुप्सोत्पादक स्रावों की थैली है। यह अस्थि और मज्जा आदि से मलिन है। इसके नव द्वार मल-मूत्रादि घृणित वस्तुओं के प्रवाह-पथ हैं। ऐसे शरीर से मित्रता कैसी ? ।।८।। हे भाई ! मन, वचन और काय की चंचलता से आस्रव (कर्मो का आगमन) होता है। ये आस्रव घनीभूत दुःखों के कारण हैं। बुद्धिमान् इन्हें निवृत्त (समाप्त) करने का यत्न करते हैं ।।९।। जिन्होंने पुण्य-पाप नही किये हैं और निरन्तर आत्मानुभव में ही चित्त लगाया है उन्होने ही आते हुए कर्मों का निरोध कर संवर—सुख का अवलोकन किया है ।।१०।। अपना काल पाकर जो कर्म झर जाते हैं, उतने से अपना (शिवसिद्धि रूप) वाञ्छित कार्य नहीं हो सकता है। उसके लिए तपस्या करके कर्मक्षय करना आवश्यक है। जो तप द्वारा कर्मनिर्जरा करते हैं उन्हें ही शिवसुख के दर्शन होते है ।।११।। इस लोक को न किसीने बनाया है और न कोई इसे धारण किये हुए है। यह तो अनादिकाल से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों से भरा हुआ है। इसका कोई नाश नहीं कर सकता। ऐसे इस लोक में यह जीव समता के अभाव में नाना योनियों में घूम रहा है ।।१२।। इस जीव ने नौ ग्रीवक तक जा-जाकर अनन्त वार वहाँ का अहमिन्द्र पद प्राप्त किया परन्तु सम्यग्ज्ञान नहीं हुआ। उस सम्यग्ज्ञान को चरित्रशील

मुनियों ने आत्मा में साधन किया है ।।१३।। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं पंच-महाव्रत इत्यादि सब धर्मरूप है और मोहभाव से अलग हैं । प्राणी जब इस धर्म को धारण करता है तब ही उसे अविचल (शाश्वत) सुख की प्राप्ति होती है ।।१४।। उस धर्म को त्यागी मुनि समग्रता मे पालते हैं । मुनियो की उन क्रियाओं का वर्णन आगे किया जा रहा है । हे भव्य ! उन्हे सुनकर अपने अनुभव की पहचान करो ।।१५।।